Gaatha, Vol.-2; Issue-1 (Jan.-June) 2025 : PP-35-37

गाथा (GAATHA)

स्त्री अस्मिता और विमर्श की सहकर्मी-समीक्षित, अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

ISSN : 3049-3463(Online)

Vol.-2; Issue-1 (Jan.-June) 2025

Page No.- 35-37

©2025 Gaatha

https://gaatha.net.in

Author :

डॉ. अंशु यादव

सहायक आचार्य,

हंसराज महाविद्यालय,

दिल्ली विश्वविद्यालय.

Corresponding Author :

डॉ.अंशु यादव

सहायक आचार्य,

हंसराज महाविद्यालय,

दिल्ली विश्वविद्यालय.

विकास का ढाँचा और आदिवासी समाज

भारतीय समाज में आदिवासियों को सर्वाधिक पिछड़ा समुदाय माना गया है। आर्थिक और सामाजिक विकास की दृष्टि से देखा जाए तो आदिवासी भारतीय समाज के हाशिये पर रहने वाले सबसे ज्यादा उत्पीड़ित और वंचित लोग हैं ।संपूर्ण भारत में "जनसंख्या में इनका अनुपात 7.5 प्रतिशत के लगभग है।"[1] स्वतंत्र भारत में इन्हें अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। आदिवासी समाज की कुछ विशिष्टताएँ उन्हें भारतीय समाज के अन्य समुदायों, वर्गों , जातियों से अलग करती हैं| सभ्य समाज से दूर जंगलों में रहने के कारण यह समुदाय खाद्य संकलन, आखेट, पशु-पालन या अन्य व्यवसायों के माध्यम से अपना जीविकोपार्जन करता है। इनका एंकाकी जीवन विकसित वैज्ञानिक युग में भी अपनी अगल रूढ़ियों, परंपराओं व अन्य विश्वासों से भरा है।

विकास की दृष्टि से आदिवासी आधुनिक सुविधाओं से वंचित हैं। वस्तुतः आधुनिक विकास ने उनके साथ अन्याय ही किया है। आदिवासी अत्यंत प्राचीन काल से अकूत प्राकृतिक संपदा के स्वामी रहे हैं और इन प्राकृतिक संसाधनों के प्रति हमेशा से संवेदनशील रहे हैं। "आज के आदिवासी की अस्मिता ही जल, जंगल, और जमीन से आबद्ध है। उनकी संपूर्ण सामाजिक संरचना और जीवन यापन का साधन जल, जंगल और ज़मीन ही है। यही और जीवन के इन्हीं तत्वो के साथ आदिवासी समुदायों की भाषा, शिक्षा, संस्कृति और जीवन शैली विकसित हुई। जो शहरी या मैदानी पहचान से एकदम पृथक है।" [2] नदी, झरने, जंगल और पहाड़ आदिवासियों के जीवन का अहम आधार रहे हैं। किंतु इतिहास की यह बहुत बड़ी विडंबना रही है कि उन्हें उनके ही संसाधनो, अधिकारों से वंचित करके इन्हें दोयम दर्जे का नागरिक बना दिया है। "आदिवासी महान संस्कृति के निर्माता रहे हैं। आर्य सभ्यता से

लेकर प्रस्तरकालीन और सैंधवकालीन संस्कृतियों, जीवंतता, नगरों का विकास व्यापार कला के अन्य रूपों के विकास इसके प्रमाण हैं।"[3] परंतु आर्यों के आक्रमण ने इन्हें हाशिये पर पहुँचा दिया, और आर्य सभ्यता के प्रसार के साथ ही आदिवासी जंगलों तक ही सीमित होते चले गए। इस प्रकार एक ओर वे आर्थिक सामाजिक दृष्टि से पिछड़ते गये और दूसरी तरफ उन पर सांस्कृतिक पहचान का संकट गहरा रहा था।

आदिवासियों के शोषण का यह सिलसिला थमा नहीं बल्कि बदस्तूर जारी है। अंग्रेजों ने भी अपनी सत्ता स्थापना हो जाने के बाद जंगलों को सामुदायिक उपयोग के संसाधन न मानकर उन्हें सत्य विशेष के उपभोग के लिए आरक्षित कर दिया गया था| हालांकि आदिवासियों ने इस शोषण का पुरजोर विरोध भी किया उन्होंने अंग्रेज़ों की शोषणकारी नीतियों के खिलाफ सिद्ध-कान्ह और बिरसा मुंडा जैसे संघर्ष भी किया है। लेकिन आज़ादी के बाद भी आदिवासी विकास के नाम पर छले जा रहे हैं। हालांकि आज़ादी के बाद आदिवासियों के लिए विशेष संवैधानिक प्रावधान भी किये गए हैं| आदिवासी विकास के नाम भी किए गया है। पंचायत राज से लेकर लोकसभा तक इन समूहों को आरक्षण दिया गया है। शिक्षण संस्थाओं और नौकरियों में भी इन समूहों के लिए विशेष कोटा आरक्षित किया गया है, विशेष योजनाओं का निर्माण किया गया है। इन सब सुविधाओं का उद्देश्य जनजातीय समुदायों की राजनीतिक-सामाजिक स्थिति को बेहतर बनाना है विशेष प्रावधानों के द्वारा उन्हें मुख्यधारा के साथ लाना है लेकिन इन सभी प्रयासों के बावजूद अपेक्षित विकास नहीं हुआ है "आदिम समुदायों की स्थिति में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं हुआ है। वे सदैव की तरह शोषित व वंचित है। आधुनिक सभ्यता तो इन सरल लोगों की लोक-प्रवृतियों को महसूस करने में भी अक्षम रही है। इस मशीनी युग के नुमाइंदो ने आदिवासी क्षेत्रों में घुसकर सब कुछ नष्ट कर दिया ही उनका संगीत, उनकी ध्वनियां, प्रकृति की लय और वह सब कुछ जो उनके जीवन के अनिवार्य हिस्सा रहे हें। लकदक कपड़ों में सजे लेागों के पहुँचने के बाद आदिवासियों में गरीबी, शोषण और मूल्यों का संघर्ष ही बढ़ा है। ये अधनंगे लोग परजीवियों के विरूद्ध संघर्ष तो करते रहे, लेकिन उन्हें कभी उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली|"[4] साहित्य की विभिन्न विधाएँ कविता, कहानी, उपन्यास आदि आदिवासियों के यथार्थ और संघर्ष को स्वर दे रहीं हैं। महाश्वेता देवी, मेहरुनिस्सा परवेज़, संजीव, मनमोहन पाठक, विनोद कुमार, राकेश कुमार सिंह और अवधेश कुमार प्रीत, सोनू आदि की रचनाओं के माध्यम से हम आदिवासी समाज, उनकी समस्याओं जटिलताओं और संस्कृति से रु-ब-रु हो रहे हैं। समकालीन कहानी ने आदिवासी समाज के यथार्थ को केंद्रीयता के साथ सामने ला रही है। विकास के नाम पर आदिवासियों के साथ हो रहे छल को उजागर कर रही है।

आदिवासी अंचलों में पिछड़ेपन के नाम पर विभिन्न विभागों परियोजनाओं तथा कार्यक्रमों के माध्यम से पैसा पानी की तरह बहाया जा रहा है। किंतु दुर्भाग्य यह है कि इसका कुछ प्रतिशत ही विकास कार्यो में खर्च हुआ है। एक ओर तो आदिवासी इन विकास योजनाओं के लाभ से वंचित हैं तो दूसरी ओर बाहरी लोगों के आदिवासियों के जीवन में घुसपैठ से परेशान। वे लगातार अपनी अस्मिता को खतरे में अनुभव कर रहे हैं क्योंकि जैसे-जैसे आर्थिक परियोजनाओं के कार्य में विस्तार हो रहा है वैसे-वैसे ही गैर आदिवासियों की इन अंचलों में सरगर्मी भी बढ़ गयी है। इन लोगों का आदिवासियों के प्रति कोई लगाव या झुकाव भी नहीं है। अवधेश प्रीत सिंह की कहानी 'आइस-पाइस' आदिवासियों के जंगलों पर अधिकार से विस्थापन और इसके प्रतिरोध की कहानी है। गैर आदिवासी एक ओर तो आदिवासियों को 'वनवासी', 'जंगली' कहकर संबोधित करते हैं, दूसरी ओर उन्हीं की प्राकृतिक संपदा का दोहन करना चाहते हैं। सरकार इन विकास योजनाओं के नाम पर आदिवासियों का कोई भला नहीं कर रही है बल्कि कहीं न कहीं जंगल के मालिकों को चोर घोषित करके बहुराष्ट्रीय निगमों का साथ दे रही है। कहानी के पात्र बिरजू काका को चोर सिद्ध कर दिया गया, जबकि ठेकेदार जो सचमुच जंगल के संसाधनों का दोहर कर रहा था, प्रशासन से मिलीभगत कर आसानी से अपना कार्य करता रहा। वनों की सुरक्षा के लिए सरकारी नियम बेअसर सिद्ध हुए हैं। वन नीति ने

आदिवासियों के लिए असंख्य समस्याएं खड़ी कर दी हैं। वनों के स्वामी वनों में घुसपैठिए सिद्ध कर दिये गये| क्योंकि उनके पास वैज्ञानिक दस्तावेज नहीं है।

भालचंद्र जोशी की कहानी 'पहाड़ों पर रात'आदिवासी समाज को मुख्यधारा में शामिल करने की राजनैतिक और प्रशासनिक कोशिशों के साथ ही, विकास के नाम पर उनके साथ किये जा रहे छल-प्रपंच पर तीखा व्यंग्य करती है। एक आवेदन-पत्र लिखवाने के लिए इस कहानी के आदिवासी पात्र किस प्रकार सरकारी कर्मचारियों के पास दौड़ते रहते हैं। बूढ़ा आदिवासी सरकारी अधिकारियों के आश्वासन पर रोज़ जाकर दफ्तर के बाहर खड़ा हो जाता है, उसे देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि तथाकथित 'विकास' के नाम पर प्रशासन द्वारा उनके साथ कितना भद्दा मज़ाक किया जाता है|" मैं अपलक उसे देखता रहा वह सहसा वह बोला, "डूबी कहां लगुन जड़ी जासे?" (भैंस कब तक मिल जाएगी?) हम जाते ही कारवाई करेंगे। भैंस तो समझो मिल गई। मेरे बोलने से पहले ही विजय ठहाका लगाकर हंस दिया और बोला, "तेरी भैंस की फिक्र तो हमारे बी.डी.ओ. साहब को तेरे से ज्यादा है। अब की गर्मियों में उनको अपनी बेटी की शादी करनी है।"[5] सरकारी कर्मचारी के उत्तर से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस आदिवासी को अब भैंस कभी भी नहीं मिल सकती। आदिवासियों के विकास के नाम पर आये पैसे को भी व्यक्तिगत खर्चों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। "विकास के नाम पर प्रशासन द्वारा एक लंबे अरसे से इनका किया जा रहा यह शोषण आज आदिवासी समाज की नियति बन चुका है।"[6]

रामधन लाल मीणा की 'कहानी' अप्रत्याशित' का नायक राजूलाल न्याय के लिए सब कुछ दांव पर लगा देने पर भी व्यवस्था के आगे हार जाता है। "राजूलाल के अब तक के जमा रूपये इधर-उधर की दौड़-धूप में खत्म हो चुके थे, उधर पटवारी भगवानदास ने नीचे से उपर अपने पैसे के बल पर सबको खरीद रखा था" ऐसी विषम परिस्थितियों में राजूलाल हार मानकर अंत में गांव छोड़कर चला जाता है। उसका बेटा प्रीतम भी चुपचाप अन्याय सहन नहीं कर पाता और वह भी इसीलिए गांव छोड़ देता है। "सुबह पता लगा तो पटवारी भगवानदास, सरपंच, हीरालाल, और पंच लल्लूराम की किसी ने हत्या कर दी है।" यह अप्रत्याशित घटना आदिवासियों में जन्म ले रहे गुस्से को अभिव्यक्ति करती है। क्योंकि 'गुस्सा बोली में न उतर कर, हाथों में उतर आ रहा है।"[7] राजूलाल और प्रीतम अपने ढंग से न्याय हासिल लेते हैं।

इसीलिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि विकास योजनाओं का लाभ आदिवासियों तक पहुँचे। विकास योजनाओं का स्वरुप कागज़ी न होकर आदिवासियों की आवश्यकता स्थिति और परिस्थिति के अनुरुप हो क्योंकि आदिवासी वनों का उपयोग अपनी न्यूनतम जरूरतों के लिए करते हैं न कि व्यावसायिक दोहन के लिए नहीं।

संदर्भ -ग्रंथ सूची :-

1. मानवशास्त्र विश्वकोष- हरिकृष्ण रावत,पृष्ठ-2,रावत प्रकाशन,जयपुर,सं-1998.
2. मानव और संस्कृति-श्यामाचरण दुबे,पृष्ठ-61-62,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,सं-1998.
3. आदिवासी, अस्तित्व, अस्मिता और साहित्य- 1, कमलेश्वर पृष्ठ-12.
4. आदिवासी समाज और शिक्षा- रामशरण जोशी,पृष्ठ-3 (अनुवादक-अरुण प्रकाश),सारांश प्रकाशन,नई दिल्ली,सं-1995.
5. पहाड़ों पर रात- भालचंद्र जोशी,पृष्ठ-63-64,पहल-40,जुलाई-दिसंबर-1990.
6. समकालीन कहानी का समाजशास्त्र- देवेन्द्र चौबे,पृष्ठ-211,प्रकाशन संस्थान,नई दिल्ली,सं-2001.
7. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी-संपादक-रमणिका गुप्ता,पृष्ठ-183,वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली,सं-2002.

•